

गुजराती लिया। वह तो हिन्दी कहते थे। वे तो चले गये। नियमसार। ८८ गाथा। ८८ में... गुप्ति का अधिकार है। गुप्ति-गुप्ति। मन-वचन-काया की ओर का झुकाव, जो भाव वह अगुप्ति है। वह अगुप्ति है, उसे छोड़ना। मन-वचन-काया के ओर के झुकाव की जो अगुप्ति है, उसे छोड़ना।

परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य समान... यहाँ तो उत्कृष्ट-मुनि की बात चलती है न! प्रतिक्रमण-निश्चय प्रतिक्रमण; निश्चय सत्य प्रतिक्रमण किसे होता है, यह चलता है। परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार चलता है। कहते हैं **परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमल...** आहाहा! अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान् पूर्णानन्द भरा हुआ है, उसकी दृष्टि करके उसमें स्थिरता करना, इसलिए उसे **परम**

तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य समान... जैसे सूर्य उगे और कमल खिले, सूर्य उगे और कमल खिले; वैसे अन्तरस्वरूप की एकाग्रता होने पर शान्ति और आनन्द खिलते हैं। आहाहा! इसका नाम प्रतिक्रमण है। है ?

परम तपश्चरण... अर्थात् आनन्दस्वरूप, आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। उस आनन्दरूपी सरोवर में कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य... जिसकी दशा राग से रहित होकर अगुप्तिभाव को रुचि और गुप्त मन-वचन-काया के परिणाम को छोड़कर शुद्धस्वरूप में ही गुप्त होता है, उस सरोवर में जैसे कमल को खिलने में सूर्य है; वैसे ये धर्मात्मा आनन्दरूपी कमल को खिलाने में सूर्य समान हैं। आहाहा! ऐसी बात है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसे वर्तमान में उसकी ओर के झुकाव से, परसन्मुख के झुकाव को रोककर शुद्धस्वभाव में एकाग्रता से, सरोवर में जैसे कमल खिलते हैं; वैसे आनन्द की कलियाँ और अनन्त गुण की कलियाँ पर्याय में खिलती हैं। ऐसी बात है। उसे यहाँ प्रतिक्रमण कहा जाता है। इसे सुनना मुश्किल पड़ता है।

परमतपश्चरण (स्वरूप जो) मुनि, वे मुनि कैसे होते हैं ?

जिन्हें अन्दर परमतपस्या अर्थात् आनन्दरूपी दशा की उग्रता। उसके कमल को खिलने के लिए जिसकी वर्तमान में अन्तर एकाग्रता की दशा खिल गयी है, उसे यहाँ निश्चय प्रतिक्रमण कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। जिसे अब संसार (अन्त) निकट आ गया है, मोक्ष होने की तैयारी है। आहाहा!

अति-आसन्नभव्य... मोक्ष के लिए जिसकी योग्यता अति निकट हो गयी है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, मुनीश्वर बाह्य प्रपंचरूप अगुप्तिभाव छोड़कर,... आहाहा! मन, वचन और काया की ओर के विकल्प, वह सब प्रपंच है। चाहे तो शुभविकल्प और राग हो तो भी वह प्रपंच है। आहाहा! है ? बाह्य प्रपंचरूप अगुप्तिभाव... बाह्य की ओर ढलते हुए विकल्प, वह सब प्रपंच है, उसे छोड़कर। आहाहा!

त्रिगुप्तिगुप्त-निर्विकल्प परमसमाधिलक्षण से लक्षित... अन्दर में गुप्त होकर, आनन्द में लीन होकर जो निःशल्य-निर्विकल्प रागरहित वीतरागदशासहित परमसमाधिलक्षण से... परमशान्ति... परमशान्ति... परमसमाधि अर्थात् परमशान्ति, ऐसी परमशान्ति के लक्षण से लक्षित अति-अपूर्व आत्मा को ध्याते हैं,... ऐसा जो अति अपूर्व

भगवान आनन्द, ज्ञान और आनन्द की मूर्ति आत्मा, उसे अगुप्ति भावना प्रपंच से छोड़कर, अन्दर में जो आत्मा को ध्याते हैं, उन्हें सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! यह तो कहते हैं कि ऊँचे गुणस्थान की बात है। तेरहवें गुणस्थान की, चौदहवें गुणस्थान की। यहाँ तो अभी छठे गुणस्थान की बात है। मुनि को ऐसा चारित्र होता है। नहीं तो चारित्र नहीं हो सकता। आहाहा!

स्वरूप जो शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें चरना और अगुप्तिभाव को छोड़कर स्वरूप में गुप्त होना, इसका नाम यहाँ से निश्चयप्रतिक्रमण अथवा निश्चयगुप्ति कहने में आता है। वे मुनीश्वर प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से... आहाहा! ऐसा मुनिपना। पंचम काल के जीव को ऐसा कहते हैं। पंचम काल के मुनि पंचम काल के जीव को सम्बोधन कर ऐसा कहते हैं, प्रभु! तुझमें इस शक्ति को प्रगट करने की सामर्थ्य है। पंचम काल है, इसलिए नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा!

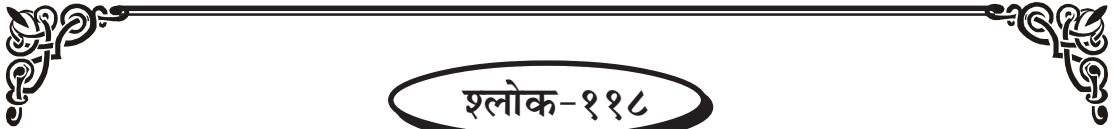
वे मुनीश्वर... वे मुनि, आहाहा! प्रतिक्रमणमय... वह तो प्रतिक्रमणमय हो गये। तीन अगुप्ति से हटकर अन्दर में गुप्त हुए, आनन्दस्वरूप में लीन हुए, वे प्रतिक्रमणमय हो गये। प्रतिक्रमण करते हैं, ऐसा नहीं; वे प्रतिक्रमणस्वरूप ही हो गये। ऐसी बातें, ९०० वर्ष पहले तो मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव हुए, वे तो टीका करते हैं और कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले हुए। पंचम काल में हुए। उन्होंने तो यह स्वयं के लिए पुस्तक बनायी है। आहाहा! उसे यहाँ धर्म प्रतिक्रमणमय धर्म, प्रत्याख्यानमय धर्म, ऐसे जीव को कहा जाता है। आहाहा!

यहाँ तो तीन अगुप्ति को छोड़कर, (ऐसा कहा है)। परवस्तु को छोड़कर, ऐसा नहीं। परवस्तु तो छूटी हुई ही पड़ी है। पर्याय में जो मन-वचन-काया के विकल्प उठते हैं, जो राग उठता है, चाहे तो शुभ हो परन्तु वह सब प्रपंच है। पर्याय में शुभराग भी प्रपंच है। उस प्रपंच को छोड़कर। आहाहा! ऐसे वीतरागी मुनि को सच्चा प्रतिक्रमण होता है। उसमें है या नहीं?

प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से... परमसंयमी हैं। अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान, उसके महल में पदार्पण। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान में जिनकी स्थापना हो गयी है, उसमें अन्दर प्रविष्ट हैं, स्थिर हो गये हैं। आनन्द की लहर में समता के सागर

वीतरागभाव से रमते हैं। वे प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से ही निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप हैं। प्रतिक्रमणमय कहा है न? प्रतिक्रमणवाला, ऐसा नहीं। प्रतिक्रमणमय। वे प्रतिक्रमणमय हैं। आहाहा! ऐसा पहले तो कथन सुनना। पहले समझे तो सही कि चारित्र कैसा होता है? समकित कैसा होता है, यह व्याख्या तो हो गयी है। अब चारित्र कैसा होता है? आहाहा! यह कोई वस्त्र छोड़ दिये, नग्न हो गया, पंच महाव्रत के परिणाम हुए; इसलिए चारित्र है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान परमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द दल में जो लीन हो गया है और रागादि प्रपंच का अगुप्ति भाव जिसने छोड़ा है, वह मुनि प्रतिक्रमणमय है। प्रतिक्रमणवाला है, ऐसा भी नहीं है, वह प्रतिक्रमण करनेवाला है, ऐसा भी नहीं है; वह प्रतिक्रमणमय है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिए यह बनाया है। जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। मार्ग यह है, बापू! आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की अनुभव की प्रतीतिसहित; शुभराग के प्रपंच को छोड़कर और शुद्धता में लीनता जम जाए, वह प्रतिक्रमणमय ही आत्मा हो गया। प्रतिक्रमण करनेवाला प्रतिक्रमणमयस्वरूप वह हुआ। आहाहा!



श्लोक-११८

[अब इस ८८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—]

(हरिणी)

अथ तनुमनोवाचां त्यक्त्वा सदा विकृतिं मुनिः,
सहज-परमां गुप्तिं सञ्ज्ञान-पुञ्ज-मयी-मिमाम्।
भजतु परमां भव्यः शुद्धात्म-भावनया समं,
भवति विशदं शीलं तस्य त्रिगुप्तिमयस्य तत् ॥११८॥

(हरिगीतिका)

मन-वचन-तन की विकृति को छोड़कर हे भव्य मुनि ।
 यह ज्ञान सम्यक् पुञ्जमय जो परम गुप्ति को सहज-
 शुद्धात्मा की भावना से युक्त हो उत्कृष्ट भज ।
 मुनिराज का चारित्र निर्मल जो सहित हैं गुप्ति त्रय ॥११८ ॥

[श्लोकार्थ :] मन-वचन-काय की विकृति को सदा छोड़कर, भव्य मुनि सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति को शुद्धात्मा की भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो । त्रिगुप्तिमय ऐसे उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है ॥११८ ॥

श्लोक-११८ पर प्रवचन

[अब इस ८८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—] कोई कहे कि भाई! समयसार में सब है । परन्तु इस नियमसार में भी क्या बाकी है ? आहाहा! कितनी ही बातें तो नियमसार में समयसार से भी विशेष की है । आहाहा! अपने आपके अनुभव के लिए, स्थिरता के लिए यह बनाया है । इसमें कितने ही विशेषताएँ हैं । शीतलप्रसादजी ने भी ऐसा लिखा है कि समयसार से भी नियमसार में कितनी ही बातें बहुत ऊँची हुई हैं । शीतलप्रसादजी ने नियमसार के हिन्दी अर्थ किये हैं । हिन्दी-हिन्दी । दूसरा छोटा नियमसार ।

यहाँ कहते हैं मन-वचन-काय की विकृति को सदा छोड़कर,... आहाहा! भगवान आत्मा मन-वचन-काया से तो रहित है । वह तो रहित है परन्तु मन, वचन और काया की ओर के विकल्प से भी रहित है । यह मन, वचन और काया की विकृति कही है । मन-वचन-काया की ओर की विकृति अर्थात् अगुप्ति-विकल्प । आहाहा! मन-वचन-काय की विकृति... मन-वचन-काया पर है परन्तु उनके ओर की जो विकृति, परद्रव्य के ओर के झुकाव का जो विकृतिभाव... आहाहा! उसे सदा छोड़कर,... आहाहा! देखो! यह चारित्र, यह प्रतिक्रमण, यह संयम । आहाहा!

मन-वचन-काया तीन वस्तुएँ तथा एक और प्रभु । मन-वचन-काया के ओर की विकृति, उसकी ओर का झुकाव, उसके ओर की सन्मुखता जो विकार, उस विकृति को

सदा छोड़कर,... उस विकृति को सदा छोड़कर। आहाहा! यह तो बाहर से स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा छोड़े, वस्त्र कुछ बदले तो हो गया त्यागी और सेठ भी उसे त्यागीरूप से मानते हैं। भाई! अपनी अपेक्षा से तो त्यागी है। कुछ छोड़ा है। मार्ग बहुत कठिन, बापू! मार्ग बहुत सरल है। वस्तु है, वहाँ जाना है तो सरल है। जिसमें नहीं उसमें से हटना है, जिसमें यह आत्मा नहीं... आहाहा! यह मन-वचन-काया में तो आत्मा नहीं परन्तु उस ओर की विकृति में भी आत्मा नहीं है। आहाहा! उस अविद्यमान चीज़ में से हटकर विद्यमान चीज़ में आना है। आहाहा! ऐसा काम है।

मन-वचन-काय की विकृति को सदा छोड़कर,... भाषा समझे? मन-वचन-काया को छोड़कर नहीं। वे तो पृथक् ही पड़े हैं। आहाहा! काया, वचन और मन तो छूटे हुए ही पड़े हैं। उन्हें और आत्मा को कोई सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! परन्तु उन मन-वचन-काया के ओर की विकृति, स्वभाव से विरुद्ध, परसन्मुख के झुकाव की विकृति को सदा तजकर। आहाहा! इतने शब्दों में बहुत भरा है। एक ओर भगवान पूर्ण शक्ति सम्पन्न परमेश्वर, उस परमेश्वर को पर्याय में मन-वचन-काया की ओर का जो झुकाव है, उस पर्याय के झुकाव को छोड़कर। वस्तु तो पूरी पड़ी है, विद्यमान चीज़ है, विद्यमान परमेश्वर है, भगवत्स्वरूप है, उस विकृति को छोड़कर... आहाहा!

भव्य मुनि... योग्य मुनि। मोक्ष के लिए जिसकी नजदीकता है, ऐसा लायक मुनि। सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी... अब क्या कहा? आहाहा! एक ओर मन, वचन और काया; एक ओर आत्मा। अब इन मन-वचन-काया की ओर का झुकाव, एक ओर परमानन्द पूर्ण शुद्ध। अब इस विकृतिभाव को छोड़कर ज्ञान का पुंज ऐसा आत्मा, (वहाँ मुनि का झुकाव है)। आहाहा! जगत से भाषा अलग है, भाव अलग। भाई! मोक्ष का मार्ग कोई अलग है न! आहाहा! सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति को... देखो! आहाहा! सम्यग्ज्ञान का पुंज, प्रभु! ऐसी सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति... यह गुप्ति ही स्वयं ज्ञानमय है, कहते हैं। जैसे भगवान सहज ज्ञानमय है तो उसकी ओर का झुकाव हुआ, वह सहज ज्ञानमय दशा है। उसमें अगुप्तिभाव, पर की ओर के विकल्प का बिल्कुल अभाव है। आहाहा! यह नियमसार।

सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति को शुद्धात्मा की भावना सहित...

आहाहा! गुप्ति, यही शुद्धात्मा की भावना है। परमानन्द का नाथ परमात्मा, शुद्ध आनन्दकन्द की भावना। लो, यह भावना आयी। भावना अर्थात् कि कल्पना, ऐसा नहीं। भावना अर्थात् उसका विकल्प करना, विचार करना, यह नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मा की भावना सहित...** परमानन्द ऐसा भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रतासहित। भावना अर्थात् एकाग्रता। वस्तु तो वस्तु है। इस ओर से तीन अगुप्ति से हटकर त्रिगुप्ति अर्थात् इस ओर ज्ञान के पुंज की पर्याय में एकाग्र होना। आहाहा! उस **भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो**। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज करुणा करके जगत को कहते हैं। वे ऐसा नहीं देखते कि यह पंचम काल है, ये लोग हल्के हैं, समाज साधारण है। मैं यह बात किसके समीप करता हूँ? कि मैं भगवान के पास बात करता हूँ। आहाहा! पामर के पास बात नहीं करता। पामर तो पर्याय में है, वह पामरता कहीं तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! दया, दान और विकल्प है, वह तो पामरता है, वह कहीं तेरा स्वरूप नहीं है। मैं उसे नहीं कहता हूँ।

परमानन्द का नाथ, जिसकी गुप्ति में ज्ञानपुंजपना प्रगट होता है, राग का पुंजपना जो था, उसमें से हट गया है और आत्मा में उस ज्ञान की पर्याय, आनन्द की पर्याय प्रगट हुई है। वह अनन्त गुण के पुंज की पर्याय प्रगट हुई है, ऐसी जो गुप्ति... आहाहा। उसे **शुद्धात्मा की भावनासहित...** शुद्धात्मा में एकाग्रता। शुद्ध परमात्मा भगवत्स्वरूप, परमात्मस्वरूप, परमेश्वरस्वरूप की भावना अर्थात् एकाग्रता को भज। आहाहा! **भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो**। यह हीनदशारूप से तीन गुप्ति नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अगुप्ति छोड़ी, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! देखो! यह पंचम काल के सन्त। ऐसे **उत्कृष्टरूप से भजो**। उसका भजन कर। परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका भजन-एकाग्रतारूप से, उत्कृष्टरूप से भजन कर। आहाहा!

त्रिगुप्तिमय ऐसे उस मुनि का... वह त्रिगुप्ति मन, वचन से हटकर गुप्त हुआ है। **उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है**। उसका चारित्र निर्मल है। आहाहा! कहो, यशपालजी! यह चारित्र आया! यह पाँच, सात, दस प्रतिमा लेकर बैठे, ग्यारह प्रतिमा, पंचम महाव्रत और नग्नपना। दीक्षा... दीक्षा... दीक्षा... दीक्षा... दीक्षा... आहाहा! कहते हैं। **उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है**। उसके चारित्र को निर्मल कहते हैं। आहाहा! मन-वचन-काया की ओर का झुकाव, वह अचारित्र है। शुद्धस्वभाव की ओर का उत्कृष्टरूप से अन्दर जघन्य अर्थात्

एकाग्रता (होना) वह चारित्र निर्मल है। आहाहा! ऐसी बात है। दूसरा सरल मार्ग कोई होगा या नहीं? वहाँ लगे हैं न? जयसेनाचार्य में व्यवहार साधक, निश्चय साध्य – ऐसा आया था। वह पसन्द किया। अमृतचन्द्राचार्य की टीका सख्त, वह पसन्द नहीं की। आहाहा! ये पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। यह अमृतचन्द्राचार्य नहीं। अमृतचन्द्राचार्य के बाद हुए पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। आहाहा! वे यह टीका करते हैं।

भगवान! तू है या नहीं? या यह सब यही है? और यह सब ज्ञात होता है, वह भी तेरी पर्याय में ज्ञात होता है। उस पर्याय में ज्ञात होता है, उस पर्याय जितना तू है? आहाहा! जिसकी सत्ता में, जिसकी मौजूदगी में यह सब ज्ञात होता है, उतना पर्याय का जानपना, उतने में वह ज्ञात नहीं होता, वास्तव में तो वह पर्याय ज्ञात होती है। उस पर्याय जितना भी तू नहीं है। आहाहा! जिसकी वर्तमान दशा में यह सब है, ऐसा जानता कौन है? जाननेवाले की दशा जानती है। जाननेवाले की दशा वास्तव में तो स्वयं को जानती है परन्तु उसका लक्ष्य पर के ऊपर है; इसलिए मानो मैं उसे जानता हूँ, (ऐसा लगता है)। परन्तु जिसमें ज्ञान नहीं, उसे जानने का, उसमें से जानने का कहाँ से आया? उसका ज्ञान उसमें नहीं, उसका ज्ञान जड़ में नहीं, वह ज्ञान वहाँ से (जड़ में से) यहाँ कैसे आवे? ज्ञान तो यहाँ (अन्दर) है। उस ज्ञान की पर्याय में यह ज्ञात होता है। यह (पर) ज्ञात होता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। वह सब है, ऐसी ज्ञान की पर्याय की सत्ता जानती है, परन्तु उस पर्याय जितना भी तू नहीं। आहाहा! तू त्रिकाली शुद्धात्मा है, वहाँ जा। उसे भज। कहा न? शुद्धात्मा की भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो। आहाहा! शब्द थोड़े, भाव बहुत भरे हुए।

निवृत्ति नहीं मिलती। अपने हित के पन्थ के लिए फुरसत नहीं मिलती। अहित के लिए घण्टों के घण्टों (निकालता है)। क्यों बाबूभाई! यह घड़ी, मशीन, अमुक-अमुक, ग्राहक आये, बिक्री की और पचास-सौ की आमदनी हुई। अर र! पूरे दिन अहित के पन्थ में दौड़ गया, कहते हैं। आहाहा! यह तो विकल्पों में दौड़ गया है। इसे छोड़कर जिसमें वह विकल्प नहीं है परन्तु ज्ञान का पुंज प्रभु है, उसे पर्याय में ज्ञान के पुंजरूपी दशा-गुप्ति प्रगट कर। आहाहा! उसे भज। भजन तो कर परन्तु उसे भज। णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं... माला गिने। वह माला रहने दे, यह माला ले। वह माला गिनने में भी अहित ही है। वह

भी अगुप्ति है। आहाहा! व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार है ही नहीं? किसने कहा नहीं? व्यवहार है, वह सब बन्धन का कारण है। आहाहा! व्यवहार वह सब बन्ध का साधन है। शुद्धस्वरूप का साधन उसमें नहीं है। आहाहा!

ऐसे उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है। बाकी कहते हैं कि सब मलिन है। आहाहा! वह मुनि का चारित्र, वह निर्मल कहलाता है। वह चारित्र, उन पंच परमेष्ठी के वन्दन में आवे। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। ऐसे निर्मल चारित्रवन्त त्रिकाल चारित्रवन्त नमस्कार में आते हैं। आहाहा! यह ८८ वीं गाथा (पूरी) हुई।

गाथा-८९

मोत्तूण अट्टरुहं झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा ।
सो पडिकमणं उच्चइ जिणवर-णिहिट्ट-सुत्तेसु ॥८९॥

मुक्त्वार्तरौद्रं ध्यानं यो ध्यायति धर्मशुक्लं वा ।
स प्रतिक्रमण-मुच्यते जिनवर-निर्दिष्ट-सूत्रेषु ॥८९॥

ध्यानविकल्पस्वरूपाख्यानमेतत् । स्वदेशत्यागात् द्रव्यनाशात् मित्रजनविदेशगमनात् कमनीयकामिनीवियोगात् अनिष्टसंयोगाद्वा समुपजातमार्तध्यानं, चौरजारशात्रवजनवध-बन्धननिबद्धमहदद्वेषजनितरौद्रध्यानं च, एतद्वित्तयं अपरिमितस्वर्गापवर्गसुखप्रतिपक्षं सन्सारदुःखमूलत्वान्निरवशेषेण त्यक्त्वा, स्वर्गापवर्गनिःसीमसुखमूलस्वात्माश्रितनिश्चय-परमधर्मध्यानं, ध्यानध्येयविविधविकल्पविरहितान्तर्मुखाकारसकलकरणग्रामातीतनिर्भेद-परमकलासनाथनिश्चयशुक्लध्यानं च ध्यात्वा यः परमभावभावनापरिणतः भव्यवर-पुण्डरीकः निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूपो भवति, परमजिनेन्द्रवदनारविन्दविनिर्गतद्रव्यश्रुतेषु विदितमिति । ध्यानेषु च चतुर्षु हेयमाद्यं ध्यानद्वितयं, त्रितयं तावदुपादेयं, सर्वदोपादेयं च चतुर्थमिति ।

तथा चोक्तं ह

(अनुष्टुप्)

निष्क्रियं करणातीतं ध्यान-ध्येय-विवर्जितम् ।
अन्तर्मुखं तु यद्बुद्ध्यां तच्छुक्लं योगिनो विदुः ॥

जो आर्त रौद्र विहाय वर्त्ते धर्म-शुक्ल सुध्यान में ।
प्रतिक्रमण कहते हैं उसे जिनदेव के आख्यान में ॥८९॥

अन्वयार्थः—[यः] जो (जीव) [आर्तरौद्रं ध्यानं] आर्त और रौद्र ध्यान [मुक्त्वा] छोड़कर [धर्मशुक्लं वा] धर्म अथवा शुक्लध्यान को [ध्यायति] ध्याता है [सः] वह (जीव) [जिनवरनिर्दिष्टसूत्रेषु] जिनवरकथित सूत्रों में [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है ।

टीका :—यह, ध्यान के भेदों के स्वरूप का कथन है।

(१) स्वदेश के त्याग से, द्रव्य के नाश से, मित्रजन के विदेशगमन से, कमनीय (इष्ट, सुन्दर) कामिनी के वियोग से अथवा अनिष्ट के संयोग से उत्पन्न होनेवाला जो आर्तध्यान, तथा (२) चोर-जार-शत्रुजनों के बध-बन्धन सम्बन्धी महा द्वेष से उत्पन्न होनेवाला जो रौद्रध्यान, वे दोनों ध्यान स्वर्ग और मोक्ष के अपरिमित सुख से प्रतिपक्ष संसारदुःख के मूल होने के कारण उन दोनों को निरवशेषरूप से (सर्वथा) छोड़कर, (३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल ऐसा जो स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान, तथा (४) ध्यान और ध्येय के विविध विकल्प रहित, *अन्तर्मुखाकार, सकल इन्द्रियों के समूह से अतीत (-समस्त इन्द्रियातीत) और निर्भेद परम कला सहित ऐसा जो निश्चय-शुक्लध्यान, उन्हें ध्याकर, जो भव्यवरपुंडरीक (-भव्योत्तम) परमभाव की (पारिणामिक भाव की) भावनारूप से परिणामित हुआ है, वह निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप है—ऐसा परम जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए द्रव्यश्रुत में कहा है।

चार ध्यानों में प्रथम दो ध्यान हेय हैं, तीसरा प्रथम तो उपादेय है और चौथा सर्वदा उपादेय है।

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(हरिगीतिका)

जो इन्द्रियों से पार, निष्क्रिय, ध्यान-ध्येय विमुक्त है।
अन्तर्मुखी वह ध्यान शुक्लध्यान यह योगी कहें ॥

[श्लोकार्थः] जो ध्यान निष्क्रिय है, इन्द्रियातीत है, ध्यानध्येयविवर्जित (अर्थात् ध्यान और ध्येय के विकल्पों रहित) है और अन्तर्मुख है, उस ध्यान को योगी शुक्लध्यान कहते हैं।

गाथा-८९ पर प्रवचन

८९ गाथा। ८९ आयी न ?

मोत्तूण अट्टरुदं ज्ञाणं जो ज्ञादि धम्मसुक्कं वा ।

* अन्तर्मुखाकार=अन्तर्मुख जिसका आकार अर्थात् स्वरूप है ऐसा।

देखो! यहाँ धर्मध्यान आया। चौथे से धर्मध्यान होता है। चौथे गुणस्थान से धर्मध्यान आता है, निश्चय धर्मध्यान, हों! टीका में आयेगा।

सो पडिकमणं उच्चइ जिणवर-णिद्धि-सुत्तेसु ॥

जिनवर ने कहे हुए शास्त्रों में ऐसा कहा है। आहाहा!

जो आर्त रौद्र विहाय वर्त्ते धर्म-शुक्ल सुध्यान में।

प्रतिक्रमण कहते हैं उसे जिनदेव के आख्यान में ॥८९ ॥

आहाहा! टीका : यह, ध्यान के भेदों के स्वरूप का कथन है। ध्यान के भेदों का स्वरूप। फिर कहे, किसका ध्यान और किसका स्वरूप? यह ध्यान का स्वरूप है।

(१) स्वदेश के त्याग से, द्रव्य के नाश से, मित्रजन के विदेशगमन से, कमनीय (इष्ट, सुन्दर) कामिनी के वियोग से अथवा अनिष्ट के संयोग से उत्पन्न होनेवाला जो आर्तध्यान,... आर्तध्यान की व्याख्या की है। आर्तध्यान किसे कहना? कि जो छोड़नेयोग्य है। स्वदेश के त्याग से,... अपना देश हो, उसमें से अन्यत्र जाना, पहिचाने नहीं (कोई तो) आर्तध्यान होगा। अभी तो कमाने जाते हैं। महाजन लोग बाहर गये हैं। करोड़ोंपति हो गये। कुटुम्ब-कबीला छोड़कर जाना... आहाहा! यह स्वदेश के त्याग से,... आर्तध्यान होता है।

द्रव्य के नाश से,... वस्तु है या मकान, पैसा, इसके नाश से आर्तध्यान होता है। मित्रजन के विदेशगमन से,... प्रिय के वियोग से, प्रिय मित्र हो, उसका वियोग हो। हम तो परदेश में जाते हैं। उसके कारण आर्तध्यान होता है। कमनीय (इष्ट, सुन्दर) कामिनी के वियोग से... ऐसे बात लेनी है। इष्ट और सुन्दर कामिनी के वियोग से... उसे अन्दर... आहाहा! ऐसी सुन्दर स्त्री थी, नागरानी जैसी रूपवान। अरे रे! मर गयी। उससे आर्तध्यान होता है।

अथवा अनिष्ट के संयोग से उत्पन्न होनेवाला... प्रतिकूल संयोग। रोग, प्रतिकूलता, निर्धनता, दुश्मन का संयोग, ऐसे संयोग के कारण उत्पन्न होनेवाला जो आर्तध्यान,... वह आर्तध्यान, पापध्यान है। आहाहा! ऐसा आर्तध्यान तो पूरे दिन चलता रहता है। इतने प्रकार में से कोई प्रकार तो चलता है। स्वदेश का त्याग, परद्रव्य में पैसा, मकान, बाहर के

सुखसाधन का नाश, मित्रजन के वियोगगमन से, प्रिय स्त्री के वियोग से और अनिष्ट के संयोग से। अनिष्ट—जो प्रिय नहीं, उसका संयोग हो। शत्रु, अनाज-पानी, रहने के स्थान, ऐसे मकान-ऐसे वस्त्र न सुहाते हों, ऐसे अनिष्ट के संयोग में आर्तध्यान होता है। वह पापध्यान है। आहाहा! उसे छोड़कर, ऐसा कहना है। अब रौद्रध्यान।

चोर-जार... लम्पटी शत्रुजनों के वध... उनकी आयु का घात करे। बन्धन सम्बन्धी महा द्वेष से उत्पन्न होनेवाला... चोर आकर बाँधे। लाओ चाबी, तिजोरी की चाबी लाओ। पलंग के साथ बाँधकर लाओ, तोड़ डालेंगे नहीं तो यह बन्दूक... आहाहा! उस समय देखो इसका रौद्रध्यान। आहाहा! जार-लम्पटी ऐसे लम्पटियों का दिखाव हो घर में आकर। अरे! यह मनुष्य लम्पटी है। यह कहाँ से? घर में गड़बड़ लगती है। उसमें फिर रौद्रध्यान होता है। आर्तध्यान से कठोर। शत्रुजनों के... शत्रुजन आकर वध करे। बन्धन सम्बन्धी... बाँधे। आहाहा! यह पलंग से बाँधे, खम्भे से बाँधे, किबाड़ से बाँधे और घर में लूटे।

मुमुक्षु : कितने ही मकान को ताला लगाकर सो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो दुःख होता है। आहाहा! ऐसे प्रकार से रौद्रध्यान होता है। प्रतिकूल संयोग से रौद्रध्यान होता है, रौद्रध्यान। आहाहा!

वे दोनों ध्यान स्वर्ग और मोक्ष के अपरिमित सुख से प्रतिपक्ष... हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों स्वर्ग और मोक्ष के सुख को सर्वथा छोड़कर। वह स्वर्ग और मोक्ष का अपरिमित सुख, उससे विरुद्ध संसार-दुःख का मूल, उन्हें दोनों छोड़कर।

(३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल ऐसा जो स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,... अब यह आया। आर्तध्यान, रौद्रध्यान को छोड़कर और आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान का आश्रय कर, (वह) निश्चय धर्मध्यान, उसका नाम सच्च धर्मध्यान है। स्व-आत्मा, जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, ऐसे आत्मा का अन्दर आश्रय कर। है? स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल... क्योंकि जरा व्यवहार शुभराग हो, उससे स्वर्ग मिलता है और जितना आत्मा के स्वाश्रित चैतन्यमूर्ति भगवान पुण्य और पापरहित, ऐसा जो आत्मा, उसका आश्रय ले, उसका नाम धर्मध्यान कहने में आता है। आहाहा! इसका नाम निश्चय धर्मध्यान कहने में आता है और उसमें विकल्प जो बाकी रह जाए, उसे व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं। विकल्प

बाकी रहे, उससे स्वर्ग है और आत्मा के आश्रय से जो आनन्द, शुद्ध चैतन्य के आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द का ध्यान, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! यह धर्मध्यान। बाहर से कहते हैं न, हम यह धर्मध्यान करते हैं। बापू! धर्मध्यान सूक्ष्म चीज़ है, भाई!

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है। उस आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर अन्तर एकाग्र हो, वह निश्चय धर्मध्यान है। वह मोक्ष का कारण है। बीच में जरा देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का शुभराग रह जाता है, उस राग का फल स्वर्ग है।

धर्मध्यान के दो प्रकार—(१) निश्चय धर्मध्यान, (२) व्यवहार धर्मध्यान। निश्चय धर्मध्यान आत्मा के आनन्द का ध्यान, निश्चय स्वाश्रित ध्यान। है न? (३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल ऐसा जो स्वात्माश्रित... स्व आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु! अन्तर वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा तो है। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अन्दर स्वरूप है, परन्तु खबर कहाँ है? आहाहा!

ऐसा जो स्व आत्मा, उसके आश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,... देखा? आहाहा! उसे धर्मध्यान कहते हैं। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप और अतीन्द्रिय ज्ञान तथा वीतरागमूर्ति आत्मा है। आत्मा भगवत्स्वरूप है, परमेश्वरस्वरूप है, स्वभाव से परमेश्वरस्वरूप है। उसका स्वभाव, उसकी शक्ति भगवत्स्वरूप है। उसका जो ध्यान, ऐसे आत्मा के परम पवित्र स्वभाव के आश्रय से ध्यान, वह निश्चय धर्मध्यान मोक्ष का कारण है। वह निश्चय धर्मध्यान धर्म है। बीच में जरा देव-गुरु, धर्म की भक्ति का शुभराग आता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, स्वर्ग का कारण है। वह धर्म नहीं है; वह पुण्य है। आहाहा! कहाँ जाना इसे? आर्तध्यान और रौद्रध्यान छोड़कर धर्मध्यान में आ जा।

धर्मध्यान अर्थात्? कि स्व-आत्मा जो चिदानन्द प्रभु; सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा वीतरागमूर्ति देखा है। वीतरागस्वरूप न हो तो वीतरागदशा आवे कहाँ से? वीतराग होते हैं, वह वीतरागदशा स्वभाव है, उसमें से आती है और भगवान को अनन्त आनन्द प्रगट होता है, वह कहाँ से आता है? कहीं बाहर से आता है? अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु अन्दर है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल आत्मा है। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप, ऐसा जो स्व-आत्मा... स्व-आत्मा; पर नहीं। है? जो अन्तरलीनता

होती है, निर्विकल्प रागरहित दशा होती है, उसे यहाँ निश्चय धर्मध्यान कहा जाता है। आहाहा! कठिन काम है, भाई!

जगत कहाँ पड़ा है? कहाँ आया? यह तो आर्त और रौद्रध्यान से निवृत्त नहीं होता। पूरे दिन व्यापार और धन्धा, यह और वह, यह किया और वह किया। उसमें फिर पाँच-पचास लाख मिले तो हो गया, मैं चौड़ा और गली सकरी हो गयी। यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि पर के आश्रय से जितने भाव होते हैं, वे आर्त और रौद्रध्यान हैं। उन्हें छोड़कर स्व-आश्रित... स्व-आश्रित कहा न? पर के आश्रय से जितने भाव हों, वे बुरे ध्यान हैं। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा, व्यापार के आश्रय से जितने भाव होते हैं, वे सब बुरे ध्यान हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान हैं। आहाहा! यह स्व-आश्रित....

भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति प्रभु! मन-वचन और काया से भिन्न तथा पुण्य और पाप के विकल्प से, राग से भी भिन्न, ऐसे स्व-आत्मा का आश्रय करे, उसे निश्चय सच्चा धर्मध्यान होता है। वह धर्मध्यान मोक्ष का कारण होता है। उसमें राग थोड़ा बाकी रह जाए, उससे स्वर्ग मिलता है। राग के फल में स्वर्ग मिलता है और वीतरागी ध्यान में मोक्ष मिलता है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है, बापू! निवृत्ति नहीं मिलती। दुनिया के कारण, बाहर की प्रवृत्ति के कारण जीव को फुरसत नहीं मिलती।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव वीतराग त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल... इसमें स्वर्ग का भी लिया है। मोक्ष का सुख तो बेहद। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' आता है न? लोगस्स में आता है। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' अन्तर अनन्त आनन्द, जो सिद्ध का सुख, ऐसा अनन्त आनन्द यहाँ आत्मा में भरा है। आहाहा! वह आनन्द प्रगट कहाँ से हो? अन्दर है, उसमें से आता है। ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, ऐसा स्व आत्मा; पर आत्मा नहीं। भगवान नहीं। भगवान की भक्ति आदि राग का कारण है। निश्चय धर्मध्यान नहीं। आहाहा! कठिन काम, भाई! भगवान की भक्ति, पूजा, भक्ति, यात्रा, आदि यह सब शुभराग है। आत्मा अन्दर स्व-आत्मा आश्रय अन्दर, अकेला राग और विकल्प से रहित स्व आत्मा के आश्रय से... है?

निश्चय-परम-धर्मध्यान,... परम धर्मध्यान... आहाहा। जिसका फल मोक्ष और

स्वर्ग है। जितना अन्तर वीतरागी स्वभाव में-ध्यान में आवे, उतना मोक्ष का कारण और परमेश्वर की भक्ति या पूजा आदि का जरा राग बाकी रहे, उस राग का फल स्वर्ग होता है। पुण्य का फल स्वर्ग मिलता है, उसमें से मोक्ष नहीं मिलता। आहाहा! कठिन काम, प्रभु!

अन्दर परमात्मा विराजता है। पूर्णानन्द का नाथ चैतन्यस्वरूप भगवत्स्वरूप है। वह भगवत्स्वरूप न तो भगवत्स्वरूप परमात्मा केवलज्ञान कहाँ से लाये? केवलज्ञानी परमात्मा केवलज्ञान लाये कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? अरिहन्त परमात्मा-णमो अरिहंताणं, अनन्त सिद्ध, (वे) अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति लाये कहाँ से? वह अन्दर भरी है। आहाहा! अन्दर पूर्ण आनन्द पूर्ण शान्ति, पूर्ण शक्ति, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, ऐसी अनन्त शक्तियों का संग्रह भगवान् आत्मा है। कैसे जँचे? ऐसे आत्मा का आश्रय करे, उसका अवलम्बन ले, उसे निश्चय सच्चा धर्मध्यान होता है। है इसमें?

स्वात्माश्रित... स्वात्माश्रित। आहाहा! पर आत्मा आश्रित नहीं। जितना भगवान् पराश्रित पर का आश्रय ले तो राग होता है और जितना स्वाश्रित अन्दर भगवान् आत्मा में एकाग्र हो, उतना वीतराग और उतना मोक्ष का मार्ग होता है। आहाहा! ऐसे परम धर्मध्यान। चार ध्यान वर्णन करने हैं न? आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान। आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों छोड़ने योग्य हैं और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान दोनों आदरनेयोग्य हैं। धर्मध्यान आत्मा के आश्रय से होता है। स्व आत्मा के आश्रय से होता है। देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से भी निश्चय धर्मध्यान नहीं होता। वे परद्रव्य हैं। उन परद्रव्य के आश्रय से हो, वहाँ शुभभाव होता है, पुण्य होता है। स्वाश्रय से आत्मा जो चिदानन्द प्रभु है... आहाहा! उसके अवलम्बन से अन्दर एकाग्र हो, उतना उसे सच्चा / सत्य धर्मध्यान होता है। उसका फल उसे मोक्ष होता है और शुक्लध्यान तो अभी है नहीं परन्तु व्याख्या करे, तब तो सब व्याख्या करे न!

(४) ध्यान और ध्येय के विविध विकल्प रहित,... ध्यान और ध्येय के विकल्प / रागरहित... आहाहा। अन्तर्मुखाकार,... अन्तर्मुख जिसका आकार अर्थात् स्वरूप है ऐसा। सकल इन्द्रियों के समूह से अतीत (-समस्त इन्द्रियातीत) और निर्भेद... भेदरहित अन्दर ध्यान। परम कला सहित ऐसा जो निश्चय-शुक्लध्यान,... यह अभी नहीं है।

वस्तु आवे, तब तो सब वर्णन करे न ? ऐसा जो निश्चय-शुक्लध्यान, उन्हें ध्याकर,... ऐसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान को ध्याकर । आर्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड़कर । आहाहा ! फुरसत नहीं मिलती । पूरे दिन पाप धन्धा । सवेरे से शाम तक यह किया... यह किया... यह किया... लिया और दिया । अकेला पाप । उसमें धर्म तो कहाँ आया ? निवृत्त होवे तो भक्ति और यात्रा आदि करे, वह शुभभाव पुण्य है; निश्चय नहीं, धर्म नहीं । निश्चय धर्मध्यान स्व आत्मा के आश्रय से होता है । कठोर जँचे, भाई ! स्व आत्मा के आश्रय से निश्चय होता है और शुक्लध्यान तो बहुत ऊँची चीज़ है । उससे तो एकदम केवलज्ञान हो जाता है । विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)